''स्वाधीनता आन्दोलन और हिन्दी राष्ट्रभाषा''

डॉ. इशरत खान

वास्तव में, स्वाधीनता आन्दोलन का आरम्भ सन् १८५७ से होता है और इसकी समाप्ति सन् १९४७ में होती है । इस प्रकार स्वधीनता आन्दोलन का इतिहास ९० वर्षों का है । इस आन्दोलन के दौरान अंग्रेजों की कूटनीति ने भारतीय जनजीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित किया । इसी के प्रतिक्रिया स्वरुप हमारे भारतीयों में एक जागृति आयी और सभी ने एकता के सूत्र में बँधकर भारत को अंग्रेजो से स्वंतत्र कराने का बीड़ा उठाया । इस कार्य को पूर्ण करने में राष्ट्रभाष हिन्दी का योगदान काफी महत्वपूर्ण रहा है ।

स्वाधीनता आन्दोलन को जहाँ तक एक तरफ राष्ट्रीय गरिमा मिली, वहीं राष्ट्रभाषा हिन्दी को भी अपना विकास करने का अच्छा मौका मिला । वैसे तो राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग बहुत पहले से होता आ रहा था । परन्तु उसका सुव्यवस्थित विकास प्रचार और प्रसार स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान ही हुआ । जब कभी हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख और ईसाई अपनी बात एक दूसरे से कहना चाहते थे तो उनकी बातचीत का माध्यम उर्दू-हिन्दी ही होता था । तब हमारे यहाँ अनेक प्रकार की अन्य भाषाएँ थीं, जैसे अंग्रेजी, फारसी और अरबी आदि । इसके बावजूद उस समय हिन्दी का महत्व कम नहीं हुआ । भारत में अपने शासन की सुचारू रूप से चलाने के लिए, अंग्रेजों ने यह अनुभव किया कि सरकार और जनता के बीच अच्छा ताल-मेल होना चाहिए और इसका मुख्य माध्यम भाषा होती है । इसीलिए अंग्रेज सरकार ने हिन्दी को बढ़ावा दिया और अपने कर्मचारियों को हिन्दी सिखाने के लिए फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की । उन्होनें प्रत्येक कर्मचारी के लिए हिन्दी सीखना अनिवार्य कर दिया था मुगल काल में भी राजकाज के कार्यों में फारसी-उर्दू हिन्दी का प्रयोग होता था । ऐसी ही परिस्थितियों के बीच प्रथम स्वाधीनता आन्दोलन (१८५७) का बीजारोपण हुआ । परन्तु कुछ कारणों से यह आन्दोलन असफल रहा । उनमें भाषा भी एक प्रमुख कारण था ।

राजनीति में गाँधीजी के प्रवेश से यह आन्दोलन और तीव्र हुआ । लोगों में स्वदेशी की भावना प्रबल हुई, जिससे राष्ट्रीयता को बल मिला । राष्ट्रीयता के विकास के साथ हिन्दी भाषा का रूप निखरा । बज्रभाषा और खड़ीबोली में साहित्यिक रचनाएँ हुई । भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग और छायावादी युग में हिन्दी राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति का मुख्य माध्यम बनी ।

हिन्दी का अखिल भारतीय रुप राजनीतिक, सामाजिक धार्मिक और सांस्कृतिक कारणों से फैला । जब देश की बागड़ोर कांग्रेस के हाथों मे आयी तब सबसे पहले वही मुद्दा सबसे सामने रखा गया कि हमारी एक राष्ट्रभाषा होनी चाहिए, जो हमारी एकता की प्रतीक होगी । गांधीजी ने स्पष्ट कहा कि मेरे विचार में ऐसी भाषा हिन्दी ही हो सकती है । सभी राजनीतिक नेताओं ने गांधीजी के इस प्रस्ताव को एकमत से स्वीकार किया । स्वाधीनता संघर्ष के सम्पूर्ण कार्यों के लिए हिन्दी

भाषा का ही प्रयोग किया गया । इस प्रकार स्वाधीनता आन्दोलन में राष्ट्रभाषा हिन्दी एक सशक्त माध्यम के रूप में सामने आयी । जैसे-जैसे स्वाधीनता आन्दोलन तीव्र होता गया, वैसे-वैसे राष्ट्रभाषा हिन्दी का विकास भी तीव्र होता गया । राजनीतीक नेताओं ने इसके विकास के लिए जी-तोड़ कोशिश की । उनमें तिलक, गाँधीजी, नेहरू और गोखले आदि का नाम लिखा जा सकता है । गाँधीजी हिन्दी के प्रति आत्मीयता का भाव रखते थे । जब वे राजनीति के क्षेत्र में उतरे तो उन्होंने हिन्दी भाषा के महत्व पर प्रकाश डाला था और उसके प्रचार-प्रसार के लिए भी काम किया ।

गाँधीजी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के कार्यक्रम को आगे बढ़ाया । कांग्रेस के कानपुर अधिवेशन १९२५ में प्रस्ताव स्वीकृत कर अपने सभी कार्यों में, प्रादेशिक कमेटियों में, प्रादेशिक भाषा और हिन्दी के प्रयोग को आवश्यक कर दिया । अखिल भारतीय पत्राचार में हिन्दी के प्रयोग पर बल दिया गया । १९५५ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने बताया कि असम में बाबा राघवदास, बंगाल में रामानन्द चटर्जी किस प्रकार हिन्दी की सेवा में लगे हुए है । यहीं नहीं प्रारम्भ के केवल अंग्रेजी में प्रकाशित "नवजीवन" और "यंग इंडिया" जैसे पत्रों को हिन्दी में भी प्रकाशित करवाया । गाँधी यह भी चाहते थे कि सरकारी कामकाज की भाषा भी हिन्दी होनी चाहिए । सन् १९३९ में हिन्दी प्रचार समिति के मंच पर गाँधीजी ने घोषणा की... "अंग्रेजी का इससे आगे बढ़ना में असम्भव समझता हूँ, चाहे कितना भी प्रयत्न क्यों न किया जाय । मगर हिन्दुस्तान को सचमुच अगर एक राष्ट्र बनाना है, तो चाहे कोई माने या न माने, इसकी राष्ट्रभाषा तो हिन्दी हो बन सकती है, क्योंकि जो स्थान हिन्दी को प्राप्त है वह किसी दूसरी भाषा को नहीं मिल सकता ।"

"भारत छोड़ो" का नारा बुलन्द करने से लगभग एक वर्ष पूर्व गाँधीजी ने देश के रचनात्मक कार्यों मे हिन्दी प्रचार को भी शामिल किया । स्वाधीनता आन्दोलन का उद्घोष हिन्दी में था । इस उद्घोष में दक्षिण भी पीछे नहीं रहा । दक्षिण में हिन्दी ने राष्ट्रीय निर्माण निर्माण की भूमिका निभाई है । दक्षिण में हिन्दी के प्रचार-प्रसार का सारा श्रेय गाँधीजी को ही जाता है । उन्होंने अपने पुत्र देवदास को दक्षिण में हिन्दी प्रचार के लिए भेजा था । इसके पश्चात तो यहाँ अनेक संस्थाएँ खुलीं और हिन्दी के प्रचार-प्रसार में अपना अच्छा योगदान दे रही है । नेहरू, लोहिया, विनोबा, पंजाब केसरी, लाला लजपतराय, मदन मोहन, मालवीय और सभी राष्ट्रभाषा हिन्दी के पक्षधर थे । लाला लजपतराय ने कांग्रेस अधिवेशन में सर्वप्रथम हिन्दी में भाषण देकर हिन्दी का गौरव बढ़ाया ।

उस समय प्रचलित धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं ने भी राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया । वैसे इसका कार्यक्षेत्र राजनीति और समाज ही रहा । इन सब कार्यों को सम्पन्न करने के लिए ये सस्थाएँ राष्ट्रभाषा हिन्दी का ही सहारा लेती थीं । इनमें आर्य समाज, ब्रहम् समाज, और प्रार्थना समाज का नाम उल्लेखनीय है । धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं में आर्य समाज वह पहली

संस्था है जिसने अखिल भारतीय स्तर पर स्वभाषा, स्वदेश एवं स्वराज्य का व्यापक आन्दोलन चलाया । उनके द्वारा स्वभाषा के लिए किया गया आन्दोलन राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में एक महत्वपूर्ण कड़ी सिद्ध हुआ ।

आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द ने राष्ट्रभाषा की तनमन और धन से सेवा की । स्वामी दयानन्द ने देश में एकता कायम करने के लिए हिन्दी भाषा को अपनाया । इस सन्दर्भ में स्वामी दयानंद का निम्नलिखित कथन कितना सार्थक लगता है... "भाई मेरी आँखें तो उस दिन को देखने के लिए तरस रहीं है जब कश्मीर से कन्याकुमारी तब सब भारतीय एक भाषा समझने और बोलने लग जायें"।

ब्रहम् समाज के संस्थापक राजा राममोहन राय राष्ट्रीय-हित के कार्यों में हिन्दी को सर्वोपरि स्थान देते थे । राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में आपका कहना था... "यदि अखिल भारतीय भाषा बनने की पूर्ण क्षमता किसी भाषा में है तो वह सिर्फ हिन्दी में है" राममोहन राय स्वंय हिन्दी में लिखते थे और दूसरों से भी लिखवाते थे । आपने एक समाचार पत्र "बंगदूत" नाम से निकाला था । बंगाली के साथ ही उसका हिन्दी संस्करण भी आपने निकाला था । इस संस्था से जुड़े नवीनचन्द्र राय, भूदेव मुखर्जी और केशवचन्द्र सैन आदि सभी ने देश की एकता के लिए राष्ट्रभाषा हिन्दी के महत्व को स्वीकारा । प्रार्थना समाज और थियोसोफिकल सोसायटी ने भी राष्ट्रभाषा हिन्दी के महत्व को स्वीकारा । प्रार्थना समाज और थियोसोफिकल सोसायटी ने भी राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया । सही मायनों में रचनात्मक स्तर पर राष्ट्रभाषा हिन्दी का विकास साहित्यिक संस्थाओं और साहित्यकारों ने ही किया । राजनीतिक नेताओं और सामाजिक कार्यकर्ताओं ने स्वाधीनता आन्दोलन में सक्रिय सहयोग दिया तो हिन्दी के साहित्यकार भी पीछे नहीं रहे । उन्होंने जनता में राष्ट्रीय प्रेम को जगाया और उनमें नवीन चेतना अंकुरित की ।

साहित्य के क्षेत्र में राजनीतिक चेतना, देशप्रेम और राष्ट्रीय भावना का प्रसार एवं विकास भारतन्दु युग से ही हुआ । भारतेन्दु ने सर्वप्रथम देश-प्रेम और राष्ट्रीय भावना का प्रचार अपने साहित्य से किया और इनके समकालीन साहित्यकारों ने इसमें पूर्ण सहयोग दिया । इन के काव्यों में राष्ट्रीय-प्रेम जागृत करन में सफल हुए । हिन्दी ने राष्ट्रीयता को सशक्त वाणी दी है इसके कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है ।

१. कहाँ करुणानिधि केसव सोए ?
जागत नाहि जतन करि भारतवासी रोए । ("नीलदेवी" नाटक)

२. अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी ।
पै धन विदेश चलि चाए, यहै अति ख्वारी ॥

द्विवेदी युग में कविता पूर्णतया राष्ट्रीयता के आन्दोलन को लेकर चली । इसका मुख्य आधार राष्ट्रभाषा हिन्दी था ।

राष्ट्रकवि मैथिलिशरण गुप्त जी की "भारत-भारती" इसी दौर की रचना है ।

यह काव्य राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत है । कुछ और उदाहरण इस प्रकार हैं...

१. क्षत्रिय ! सुनो अब तो कुयश की कलिमा को मेट दो ।
निज देश को जीवन सहित तन, मन तथा धन भेंट दो ।

२. जग में जन्म भूमि सुखदायी, जिस मर पशु के मन न समायी ।
उसके मुख दर्शन नर नारी, होते है अंध के अधिकारी ॥

इस युग के अन्य प्रमुख राष्ट्रीय कवियों में बालकृष्ण शर्मा नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी और सुभद्राकुमारी चौहान के नाम उल्लेखनीय है । माखनलाल चतुर्वेदी आदि स्वातंत्र्य आन्दोलन के एक प्रमुख स्तम्भ और क्रान्तिकारी कवि रहें है । वे देश के लिए बलिदान होना ही 'बसन्त-उत्सव' मानते थे । चतुर्वेदी जी ने "पुष्प की अभिलाषा" नामक कविता में एक देशभक्त के बलिदान की पवित्र भावना को दिखाया है...

चाहे नही मैं सुर बाला के गहनों मे गूंथा जाऊँ
चाह नहीं, प्रेमी माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ...
मुझे तोड़ लेना वन माली, उस पथ में देना फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक"।

सुभद्राकुमारी चौहान की अधिकांश कविताएँ राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत है । इनकी "झांसी की रानी" नामक कविता बहुत प्रसिद्ध रही हैं । इसी कविता से उदाहरण दृष्टव्य है ।

इस समाधि में छिपी हुई है एक राख की ढेरी
जलकर जिसमें स्वतन्त्रता की दिव्य आरती फेरी ।

छायावादी कवियों ने अपनी प्रेम सौन्दर्य की कविता में राष्ट्रीय भावना को महत्व दिया है । इनमें प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी के नाम उल्लेखनीय है । इनकी राष्ट्रीय कविता के कुछ उदाहरण प्रस्तुत है :-

१) अरूण यह मधुमय देश हमारा ।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा ॥
सरस तामरस गर्भ विभा पर, नाच रही तरूशिखा मनोहर ।
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल-कुम कुम तारा ॥
(प्रसाद)

२) भारत ही जीवन धन,
ज्योतिर्मय परम-रमण
सर-सरिता वन-उपवन, (निराला)

(३) छायावादी युग के कवियों ने राष्ट्रीयता से भरपूर कविताओं के लिए हिन्दी भाषा को अपनाया है । नवीन काव्य-शिल्प (जैसे संस्कृतनिष्ठ शब्द, प्रतीक और बिम्ब आदि के कारण हिन्दी का राष्ट्रभाषा वाला रूप दबा हुआ गया है । इस तरह की भाषा जनसाधारण में सम्प्रेषित नहीं हो सकती है । हाँ इस समय की लिखी हुई कहानियों और उपन्यासों में राष्ट्रभाषा हिन्दी का रूप मिल जाता है ।

साधारण जनता इन कहानियों और उपन्यासों को पढ़कर अपने देश की सही स्थिती का अन्दाज़ा कर सकती है । प्रेमचन्द का कथासाहित्य इसका अच्छा उदाहरण है । पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भी, राष्ट्रभाषा हिन्दी का विकास हुआ । इनमें उदन्त-मार्तण्ड, बंगदूत, बनारस अखबार, कविवचन सुधा, मैगज़ीन, ब्राम्हण, हिन्दी प्रदीप, आनन्द कादम्बिनी, उचित वक्ता, भारत मित्र और सरस्वती आदि पत्रिकाओं की हिन्दी सेवा भुलाई नहीं जा सकती है ।

उपर्यक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि स्वाधीनता आन्दोलन की तेज़ी के साथ-साथ हिन्दी का प्रचार भी बढ़ा । हिन्दी भाषी राज्यों के अतिरिक्त अहिन्दी भाषी राज्यों में, "स्व" और राष्ट्र की भावना से प्रेरित होकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार में कोई व्यवधान उपस्थित नहीं हुआ । बरन सबने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत करके इसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया ।

परन्तु बहुत ही दुख के साथ कहना पड़ता है कि स्वंतत्र्योत्तर भारत में राष्ट्रभाषा हिन्दी का उतना विकास नही हो पा रहा है जितना स्वंतत्रता के पूर्व हुआ था इसका कारण राष्ट्रीय भावना का अभाव हो सकता है अत: जो इस ओर ध्यान दिया जाना अत्यंत आवश्यक है ।